बिन जिया जीवन

कुलदीप कुमार

लम्बे विलंबित के बाद उठता स्वर

दिनेश कुमार शुक्ल

कविता में कुलदीप कुमार की उपस्थिति पिछले पाँच दशकों से हैं। उन्हें पहली बार 1974 में *उत्तरार्ध* पत्रिका में देखा गया था, जिस में सव्यसाची जी ने उनकी कविताओं को प्रमुख स्थान दिया था। उस वर्ष की ऐतिहासिक कर रेल हड़ताल पर उनकी कविता, 'दृश्य- गिद्ध' बहुत से पाठकों की स्थिति में आज की बनी हुई है:

... दृश्य में टिल्लू है और उसके बीमार खाँसती माँ है
कुत्तों की आहट पर काँपती हुई एक बस्ती है
एक नदी है जो उसके भीतर तभी से बहती है
जब लोहा टोप और बंदूक के भेस में आया था
और टिल्लू के बाबूजी के हाथों पर बैठ गया था...

यह समय तब के शीर्षस्थ कवि धूमिल कर ज़माना था जो लोहे की काव्य-वस्तु को कविता में उतार रहे थे। 'लोहे का स्वाद लोहार से मत पूछो' या 'वाह भाई वाह! लोहा भी सोचता है...।' वह युग ही ऐसा था जब सत्ता के बढ़ते अधिनायकत्व से हिन्दी कभी सीधे भिड़ रहे थे। कुलदीप की कविता भी की जड़ भी उसी भाव भूमि में है।

कविता में इतनी लंबी उपस्थिति के बावजूद कभी कुलदीप का पहला कविता संग्रह, 'बिन जिया जीवन' अब आया है। सब की तरह कवि की भी अपनी रोज़मर्रा की बाध्यताएँ होती है, जिनसे उसका संघर्ष लगातार चलता रहता है। लेकिन कविता ने जिसे

एक बार स्पर्श कर लिया वह उससे बाहर नहीं जा सकता, घूम घूम कर उसी के पास आता है। तुलसीदास के शब्दों में, 'लुबुध मधुप इव तजइ न पासू'।अथवा सूरदास के शब्दों में, 'जैसे उड़ि जहाज़ के पंछी पुनि जहाज़ पै आवे।' कविता कवि को उसकी सीमाओं और बाध्यताओं के पार ले जाने का काम करती है। लगता है कि कविता ने इस बार कवि कुलदीप को बाध्य कर दिया कि, व्यस्तताओं के बावजूद लंबे समय के बाद ही सही, वे अपना पहला पहला कविता संग्रह पुस्तकाकार रूप में मैं पाठकों को उपलब्ध करायें।

पाँच दशकों के लंबे विलंबित के बाद आए इस कविता संग्रह का नाम, *बिन जिया जीवन* है। प्रत्येक कविता अगम को सुगम बनाने की एक कोशिश है, अधिक से अधिक को भाषा में भर लेने का प्रयास है यहाँ तक कि उसे भी जो जीवन के पास से गुज़र गया होता है; किन्तु उसे स्पर्श कर पाना कठिन है। रेल के डिब्बे की खिड़की से दिखाई तो कितना पड़ता है- लोग, गाँव, शहर, नदी, पहाड़... लेकिन यह सब तेज़ी से पीछे छूटता चला जाता है। बाज़ारवाद के चलते वर्ग चेतना को हाशिये पर धकेलते हुए अस्मितावादी विमर्श का बोलबाला बढ़ा है। वर्ग चेतना के साथ- साथ अनेक जीवन- मूल्य, अनेक बोलियाँ- भाषाएँ, अनेक संस्कृतियां, अनेक वनस्पतियां और जीव जन्तुओं की प्रजातियां तेज़ी से लुप्त होती जा रही है। कविता इन तमाम जीवन- मूल्यों, आदर्शों और जीव- जन्तुओं के छूटते चले जाने का एहसास का दूसरा नाम है। चीज़ों को बचा पाने की कोशिश है कविता। यही इस संग्रह की कविताओं का मूल स्वर है। यह स्वर इन कविताओं में गहराई से उठता हुआ स्वर है। दो उद्धरण-

...मैं अभी तक उसके इंतज़ार में हूँ

हालाँकि मुझे अच्छी तरह मालूम है

इस तरह से गाड़ी पकड़कर छूमंतर हो जाने वाले

कभी वापस नहीं आते हैं...

('रेलवे स्टेशन का पुल')

...यह कमरा नहीं

बरसों से जोड़ी हुई किताबें है

जिन्हें पढ़ने का वक़्त अब

कभी नहीं मिलेगा

मैं इस कमरे में रहेगा रहूंगा

उसी तरह

जैसे इस जर्जर शरीर में मिला।

('मेरा कमरा')

कविता कवि को लगातार अपूर्णता का बोध कराती रहती है। यही ख़लिश कवि के भावबोध को आगे बढ़ाती है। कविता अनजिए जीवन को जी लेने का एक उपक्रम है। कुलदीप के कविता- संग्रह का यह नाम, दरअसल दुनिया की हर एक कविता संग्रह का नाम है- भले ही अदृश्य रौशनाई में लिखा हुआ।

कुलदीप कुमार पेशे से पूर्णकालिक पत्रकार है और ज़्यादातर अंग्रेज़ी मीडिया में लिखते हैं। भारतीय और अंतरराष्ट्रीय मीडिया में भारतीय नाटक, संगीत समकालीन हिन्दी साहित्य तथा अन्य कला- विधाओं की उपलब्धियों और सरोकारों को वे विस्तार से उजागर करते रहे हैं। वैसे तो अंग्रेज़ी मीडिया में हिन्दी लेखन और लेखकों के प्रति उपेक्षा का इलिटिस्ट भाव पहले से ही रहा है, पर समय बीतने के साथ और अंग्रेज़ी पत्रकारिता के लगातार गिरते स्तर के चलते अज्ञान और उपेक्षा का भाव बढ़ता ही गया है। ऐसे वातावरण में भी कुलदीप कुमार ने इस आयरन- कर्टेन को बखूबी भी तोड़ा है और समकालीन हिंदी साहित्य से वे अंग्रेज़ी मीडिया के पाठकों को परिचित कराते रहे हैं। भारतीय संगीत और संगीत- कार्यक्रम पर उनकी रिपोर्टिंग बहुत महत्वपूर्ण होती है।

संगीत के साथ लंबी संगत का अनुभव कुलदीप की कविता को एक ख़ास तरह का क्लासिकल स्वभाव प्रदान करता है। ऐसी कविता में शब्द एक दूसरे को पकड़कर आपस में संगत बैठते हुए पूरी रचना को सघन- अर्थवत्ता और एक विशिष्ट संयम की शक्ति प्रदान करते हैं। कुलदीप भाषा को बहुत संवेदनशीलता के साथ स्पर्श करते हैं, मानो कोई आदमी बहुत संभालकर नवजात शिशु को गोद में उठाना चाहता हो, पर हिचक रहा हो। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी कविता अल्पभाषी है। बल्कि इस स्वभाव की कविता प्रायः अपने कथ्य को, पाठक के सामने रंगमंच के दृश्य की तरह थ्री- डाइमेंशन में प्रकट करती है। कुछ उदाहरण:

1. महाभारत के युद्ध का

सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर प्रेम में

निराश

विफल

विकल

जिसके हृदय में इतने बाण धँसे

कि वह उसका तूणीर ही बन गया...

('द्रौपदी')

द्रौपदी यह दृश्य देख रही है और उसकी आँख से आप भी देख रहे हैं कि सामने लड़खड़ाता वाणविद्ध लहूलुहान अर्जुन रंगमंच पर अब गिरा कि तब गिरा- यह रंगमंच का प्रेम है जिस पर अर्जुन को अपनी प्रिया द्रौपदी को वस्तु की तरह पाँचों भाइयों के साथ बाँटना पड़ा था।

2. ...मैं सचमुच मुस्कुराया/ तुम आदतन...

यहाँ प्रेम आवेग के साथ खुलने के लिए आगे बढ़ता है किंतु वह औपचारिकता की मुस्कुराती हुई ठंडी दीवार से जा टकराता है। मुस्कान का अर्थ प्यार समझ लेना एक ज़माने में आम बात थी। अब शायद नई पीढ़ी अधिक अनुभवी हो गई है। हे पाठक! क्या पता कि आप भी इस अनुभव से कभी गुज़रे हों।

बिहाग के नाग

जब लिपटते हैं

और निखिल बनर्जी जब अल्हड़ प्रेमी की तरह

उनकी आँखों में आँखें डालकर

सितारों को बीन की तरह बजाते हैं

तब/मुझे लगता है

मुझसे अधिक सुखी कोई नहीं...

मैने आज राग देख लिया

('राग दर्शन')

यहाँ निखिल बैनर्जी का सितारवादन गंधर्व का रूप धरे अपने दोनों हाथों में नागों का वलय पहन कर मंच पर भावाभिभूत राग में भीग रहा है। इस कविता को पढ़ते समय आप भी साकार राग- दर्शन कर सकते हैं।

अमूर्त के मूर्तन की ऐसी अनेक छवियां इस संग्रह में देखी जा सकती है। कविता का यह गुण समकालीन कविता के क्रमशः कम होता जा रहा है। अधिकांश समकालीन कविता में भयावह एकरुपता है: एक जैसी भाषा, कथ्य की एक- सी पीटी-पिटायी ज़मीन, विचार की विविधता का निषेध, वर्ग चेतना का लोप, अस्मितावाद का मायाजाल और अनुवादिकता का दमघोटू एक- सा विन्यास। समकालीन कविता की एक ऐसी एकरूप भेड़- चाल से कुलदीप ने अपनी कविता को बचा रखा है। कविता के समकालीन प्रचंड अवसरवाद की आँधी में कुलदीप की कविता आशादीप की तरह जगमगाती है। यद्यपि पेशेगत व्यस्तताओं और प्रतिबद्धताओं के चलते कुलदीप को कल्चर के बाज़ारी चाकचिक्य और चहल- पहल के समारोह में शरीक होना पड़ता है और पत्रकारिता में यह दिख भी जाता है। किंतु जहाँ तक कविता का सवाल है उसमें कुलदीप अपने स्वत्व और व्यापक मानवीय- सरोकारों से सीधे- सीधे जुड़े रहते हैं।

इसलिए इस कविता की पहुँच और व्याप्ति गहरी है। समाज में बढ़ते हुए दैन्य, फैलती हुई बेकारी, हिंसा और असमानता का प्रतिरोध इन कविताओं में शांत और दृढ़ता के स्वर में व्यक्त होता है- 'चौकीदार की चिंता', 'चौराहे पर लड़की', 'सुबह और सपने', और 'समय' जैसी इस संग्रह की कविताओं में प्रतिरोध का यह स्वर सुना जा सकता है:

...सुबह तो सोने के बाद होती है

लेकिन सोना होता ही कहाँ है

नींद की बस लपेटें-सी उठती हैं

और सब कुछ राख कर चुकने के बाद

मेरी पलकों पर ठहर जाती है

मुझे तभी मुझे नींद आ पाती है थोड़ी- सी देर

लेकिन सपने नहीं आते हैं

उन्हें मैं जागते हुए देखता हूँ

('सुबह और सपने')

इस कविता- संग्रह की विशिष्टता है इसका रागानुराग। रागानुराग से मेरा तात्पर्य है कि कवि की संवेदना का वह पक्ष जो एक विराट और सूक्ष्म में अंतर्निहित सौंदर्य को उतार सके। ऐसी कविता कलाओं के माध्यम को अतिक्रमित करती हुई कथ्य की आंतरिक छटा को शब्दों के विस्मृत आकाश में उठा देती है- उसके सौंदर्य को ब्रॉडकास्ट कर देती है। सर्वसुलभ कर देती है। कला जितना कुछ अपने माध्यम से व्यक्त कर पाती है, एक संवेदनशील मन, उसके भी पार जाकर देखना चाहता है। इन अर्थों में, मैं समझता हूँ

कि कविता कलाओं की कला है। अच्छे कवि का एक काम यह भी है कि बच्चों की तरह परदा उठाकर ग्रीन- रूम में शरारतन कभी- कभी झांक ले। इस संग्रह की कविताओं में इस नज़र का असर बख़ूबी देखा जा सकता है:

1. रात में कभी कभी बाँसुरी बजती है

चंद्रमा की नाभि से झरता है अजस्र जीवन रस

...

चंद्रमा की नाभि से

तिलक कामोद झरता है...

('तिलक कामोद')

2. रानी की आग

वही जानता है जो इसमें जला है...

3. छल नहीं...

मुझे प्यार ने पछाड़ा है

('मैं')

जीवन दुख- सुख आनंद- विषाद, आशा- निराशा के ताने- बाने में निरंतर बनती बिगड़ती संरचना है, जिसमें कवि ख़ुद ही भी कहीं बैठा हुआ होता है। कविता की सिद्धि यही है कि वह इस वितान में होते हुए भी इसके बाहर जाकर इसको निर्द्वंद्व- निस्संग